 ISSN : 2347-7660 (Print) | ISSN : 2454-1818 (Online)

विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षा के बदलते आयाम

डॉ0 ज्योति सिन्हा,

पूर्व फेलो,

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान,राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि.प्र0)

ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है– मनुष्य। अद्भूत एवं अलौकिक चिन्तन शक्ति से उसे समृद्व किया। एक सामाजिक प्राणी के नाते उससे अपेक्षा की जाती रही कि वह अपने विचार व चिन्तन शक्ति का भरपूर प्रयोग समाज, देश व राष्ट्र के विकास में करे। शिक्षा–दीक्षा मनुष्य को इस योग्य बनाती है कि वह एक सुसम्य, सुसंस्कृत, आदर्श नागरिक एवं अच्छा राष्ट्र चिन्तक बन सके। विद्या, बुद्वि, ज्ञान, अध्ययन एवं विवेक से मिलकर जो अमूल्य निधि संचित होती है वह मनुष्य को मनुष्यता तक ले जाती है। रोटी कपड़ा मकान जिस तरह हमारी मूलभूत जैविक आवश्यकतायें है उसी तरह शिक्षा और संस्कार हमारी सामाजिक आवश्यकतायें हैं। प्रथम पक्ष जहाँ हमारे शरीर को सुरक्षित एवं संरक्षित रखता है वहीं दूसरा पक्ष हमारे मन–मस्तिष्क व व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

प्राचीन काल से ही शिक्षा प्रदान करनें की प्रणाली हमारे देश में प्रचलित रही है। जिसकी व्यवस्था युगधर्म के अनुसार परिवर्तित होती रही है। शिक्षा का विकास केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये ही नहीं हुआ था। अपितु धर्म के मार्ग पर चलकर मोक्ष प्राप्त करनें का अनवरत प्रयास भी था। शिक्षा का मूल उद्देश्य ईश्वर भक्ति की भावना एवं धार्मिकता का समावेश, व्यक्तित्व का विकास, चरित्र निर्माण, नागरिक व सामाजिक कार्यों को करनें की दक्षता, उन्नति एवं संस्कृति का संरक्षण करना था जिसका सीधा सम्बन्ध राष्ट्र के विकास से था।

मगध, नालन्दा, तक्षशिला तथा पाटलीपुत्र इत्यादि प्रमुख शिक्षा केन्द्र थे जहाँ अनेक विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिये जाते थे जैसे–जैसे समय आगे बढ़ा युग के मांग के अनुसार मनुष्य को अनेक सुविधाओं और अवसर मिले।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देखें तो यह बात सामने आती है कि शिक्षा के क्षेत्र में यद्यपि संख्यात्मक दृष्टि से व्यापक सुधार हुआ है परन्तु जो दोष उभरे हैं वह भी किसी से अज्ञात नहीं है। इस समय देश में लगभग 300 विश्वविद्यालय, 12000 कालेज तथा 1000 अन्य संस्थायें हैं जो शिक्षा प्रदान कर रही है। परन्तु इन संस्थाओं से प्रतिवर्ष हजारों संख्या में निकलने वाले विद्यार्थियों की शिक्षा–दीक्षा पर एक प्रश्न चिन्ह् से लग गया है। आज विद्यार्थी जिस प्रकार की शिक्षा पा रहा है, शिक्षा प्रणाली का जो रूप दिखाई दे रहा है और निरन्तर जारी है वह कहां तक हमारे व्यक्तित्व का निर्माण कर पानें में सक्षम है। आज की शिक्षा प्रणाली व्यक्ति को साक्षर बनानें तक का ही कार्य करती है। प्रतिवर्ष लाखो दिशाहीन शिक्षित बेरोजगार युवाओं को खड़ा कर अपनें कर्तव्यों की इतिश्री समझ रही है। इन सबके पीछे एक महत्वपूर्ण कारण है–व्यावसायिकता जिसे विद्या देवी का मंदिर समझा जाता था आज ये संस्थायें पूर्ण रूप से व्यावसायिक हो गयी है, उत्पादन करनें की मशीन मात्र रह गयी है, ऐसी स्थिति में इनसे भला अपेक्षा भी क्या की जा सकती है? दिन–प्रतिदिन यह शिक्षा इतनी बोझिल एवं महंगी होती जा रही है कि प्रत्येक व्यक्ति इसका निर्वाह नहीं कर सकता। विद्यालयों,

महाविद्यालयों में प्रतिवर्ष की संख्या तो बढ़ रही है। परन्तु गुणवत्ता दिन ब दिन घट रही है। उपाधियों के प्रति लोगों का मोह अवश्य बढ़ा है परन्तु ज्ञान के नाम पर कोरा कागज शिक्षा का व्युत्पत्तिशत अर्थ है– शिक्ष्यते, उपदिश्यते यत्र सा शिक्षा। अर्थात जिस प्रणाली अथवा माध्यम से उपदेश दिया जाता है, वही शिक्षा है।

देश के समक्ष अनेक चुनौतियां है पर शिक्षा जगत की चुनौतियां है पर शिक्षा जगत की चुनौतियों का सम्बन्ध राष्ट्र के भविष्य से है। आज अनेक विकृतियां एवं विसंगतीयां उत्पन्न हो गयी है जिसके फलस्वरूप आये दिन छात्रों व शिक्षकों के बीच असंतोष एवं आन्दोलन की चर्चायें सुनाई पड़ती है। जिसके कारण विद्यालयों का शैक्षिक वातावरण बाधित होता है तथा पठन पाठन का क्रम अव्यवस्थित हो जाता है। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था जिस विद्या की प्रस्तुति कर रही है वह आदि से अन्त तक सर्वत्र भय और आतंक से व्याप्त है ये संस्थायें सक्रिय राजनीति का केन्द्र बनती जा रही है।

उच्च शिक्षा की दयनीय दशा से परिचित होने के लिये किसी शोध अथवा सर्वेक्षण की आवश्यकता नहीं है फिर भी India innovation Towards sustanable of exclusive growth द्वारा जारी की गयी सर्वे रिपोर्ट के अनुसार भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त 75 से 90 प्रतिशत ग्रेजुएट नौकरी के लायक ही नहीं है। ये सिर्फ शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ा रहे है। ज्यादातर विश्वविद्यालय ऐसी डिग्रीयां बांटने का केन्द्र बनकर रह गये हैं जिनका कोई महत्व नहीं है। ये महज डिग्री धारकों की फौज तैयार कर रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप बेकारी, भुखमरी, व भ्रष्टाचार दिन ब दिन बढ़ रही है। पाँच से बीस वर्ष की आयु तक हमारे युवक शिक्षा–संस्थाओं में व्यतीत करते हैं तथा इतने अर्थ व्यय व श्रम–व्यय के बाद स्वयं को व्यवसायहीन पाते हैं जो एक बेहद गम्भीर समस्या है।

अन्य विषयों की तुलना में कलागत विषयों की शिक्षा व्यवस्था अत्यधिक सोचनीय है। रोटी, कपड़ा और मकान के बाद ही आज की मानवीय सभ्यता में कला को स्थान सर्वोपरि है क्योंकि यह अभूतपूर्व है। प्राचीन परिपाटी पर यदि हम गौर करें तो जहां संगीत गिने–चुने लोगों तक ही सीमित था आज सर्वत्र व्याप्त है तथा जन–जन तक इसका प्रभाव एवं प्रचार–प्रसार है। आज संगीत की शिक्षा का देश में अभाव नहीं है। प्रारम्भिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालयीन शिक्षा तक में संगीत को स्थान प्राप्त है। सन् 1950 में संगीत को उच्च शिक्षा में विषय रूप में स्थान दिया गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी का संगीत एवं मंचकला संकाय विश्वविद्यालय से जुड़ा पहला संकाय है जहां संगीत विषय में शोध कार्य एवं शोध उपाधियां प्रदान करनें की मान्यता मिली। इस समय वर्तमान में देश के लगभग 30 विश्वविद्यालयों में संगीत को विषय के रूप में स्थान मिल चुका है। उत्तर प्रदेश में सिर्फ अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय को छोड़कर शेष सभी में करीब संगीत का पठन–पाठन हो रहा है। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसी संस्थायें है जो संगीत की यथोचित शिक्षा दे रही है। करीब 175 ऐसी प्राईवेट तथा गैर सरकारी संस्थायें हैं जहां संगीत की शिक्षा की समुचित व्यवस्था है। जो उच्च शिक्षा प्राप्त करनें वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी प्रदान कर ती है। सांस्कृतिक आदान–प्रदान के तहत ये छात्र विदेश के दौरे पर भी विश्वविद्यालयों द्वारा भेजे जाते हैं।

परन्तु यह तस्वीर स्वतंत्र भारत मे संगीत के प्रचार–प्रसार एवं उसके विकास के लिये किये गये प्रयासों की है। आज हम इस सुविधा का लाभ उठा पा रहे हैं? दिन प्रतिदिन संगीत की शिक्षा लेने वाले विद्यार्थियों की भीड़ बढ़ती जा

रही है परन्तु इनमें से कितने छात्र है जो इस विषय को गम्भीरता से लेते हैं? अधिकांश विद्यार्थी परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करनें के उद्देश्य से इस विषय को ले लेते हैं। और बड़े ही आसानी से बी0म्यूज और एम0म्यूज की डिग्री ले लेते हैं। येन केन प्रकारेण ये छात्र अध्यापन कार्य से भी इन्ही डिग्रीयों के सहारे जुड़ जाते हैं और फिर शुरू हो जाती है। एक प्रक्रिया–अधकचरे ज्ञान को प्रदान करनें की। जिसका परिणति संगीत के गिरते हुये स्तर के रूप में है।

जब हम संगीत की बात कर रहे हों तो एक बात स्पष्ट करना अति आवश्यक है क्योंकि अन्य विषयों की तुलना में संगीत का स्वरूप सर्वथा भिन्न है। संगीत एक गुरूमुखी विद्या है। एक ऐसी प्रयोग प्रधान कला है जिसका केवल शास्त्र या व्याकरण जाननें से कला का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। अन्य कोई विषय बहुत हद तक ग्रंन्थों, पुस्तकों के माध्यम से पढ़ा जा सकता है, परन्तु संगीत नहीं क्योंकि यह अनुभुति का विषय है। मूलतः यह एक प्रायोगिक विद्या है जो साधना के बिना अकल्पनीय है। अतः विषयगत रूप में, एक सीमित अवधि में संगीत की शिक्षा लेना और देना दोनों ही कठिन है। आज पहले जैसा वातावरण नहीं रह गया है, वह शिक्षा पद्वति नहीं रह गयी है। जिसमें गुरू व शिष्य के बीच सीना–बसीना तालीम का महत्व था, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सम्पूर्ण शिक्षण पद्वति ही दोषपूर्ण है। शिक्षा सम्बन्धी जिन कठिनाईयों का सामना आज संगीत को करना पड़ रहा है उतना अन्य किसी विषय या कला को नहीं। देखनें पर पता चलता है कि संगीत का व्यापक प्रचार–प्रसार है, परन्तु इन संस्थाओं ने संगीत का वातावरण अवश्य बनाया है परन्तु शिक्षण पद्वति संतोषजनक नहीं बनाया है। पाठ्यक्रम के अनुसार एक वर्ष की अवधि में 15–16 राग व ताल सिखाई जाती है। प्राचीन पद्वति को देखा जाये तो स्वर ज्ञान व राग ज्ञान में सालों लग जाते थे। पाठ्यक्रम में राग की Quality पर नहीं राग की Quantity पर ध्यान दिया जाता है। अतः विद्यार्थी भी खानापूर्ति करता है और बंधा–बंधाया रटा–रटाया गानें के सिवा वह कुछ भी नहीं कर पाता है उसका दृष्टिकोण केवल परीक्षायें पास करनें के पाठ्यक्रम तक ही संकुचित हो जाता है। पाठ्यक्रम को वर्ष के अन्त तक पूरा करना पड़ता है, शिक्षक भी इसी उद्देश्य के लिये बाध्य हो जाता है। ऐसी स्थिति में पूरे रागों को अच्छी तरह सीख पाना अत्यन्त दुरूह है। शास्त्र के प्रति संगीत विद्यार्थियों की रूचि नगन्य ही रहती है। रियाज व रागों के चक्र से उन्हे फुर्सत ही कहां कि वे संगीत के सैद्वान्तिक पक्ष को समझ सके। बी0ए0 की थ्योरी जहां कमजोर है वहीं एम0ए0 की जरूरत से ज्यादा सूक्ष्म एवं व्यापक है। शिक्षा का सामुहिक स्वरूप की जो व्यवस्था है उसमें संगीत के लिये एक कठिनाई यह आती है कि एक ही स्केल में सभी विद्यार्थियों को गाना पड़ता है, चाहे वह स्केल उनके कण्ठगत विशेषता के अनुरूप हो या न हो। गुरू शिष्य का अन्योन्य सम्बन्ध भारतीय शास्त्रीय संगीत की शिक्षा का अनिवार्य शर्त है जिसे विश्वविद्यालय पूरा नहीं कर सकते। विद्यार्थियों को एक ही समय में विभिन्न घरानें के गुरूओं से शिक्षा प्राप्त करना पड़ता है। तथा रागों के स्वरूप एवं लयकारियों के मतभेद से वह स्वयं भ्रमित हो जाता है। ढेर सारी छुट्टियां, विद्यार्थियों में धैर्य, लगन, अनुशासन गुरूभक्ति का अभाव अत्यधिक पाठ्यक्रम का बोझ तथा पाठ्यक्रम के अनुपात में कक्षाओं की सीमित संख्या का होना भी संगीत के विकास में बाधक है। विद्यार्थियों की रचनात्मक क्षमता का विकास नहीं हो पाता। वह स्वयं नही जानता कि संगीत की शिक्षा वस्तुतः वह किस लिये प्राप्त कर रहा है क्या आज उद्देश्य केवल डिग्री प्राप्त करना नहीं रह गया है? डिग्री के महत्व का बोझ हमारे मन–मस्तिष्क पर इस तरह हावी है कि हम अपने मूल उद्देश्य से भटक गये हैं। आज विद्यार्थी जीवन का लक्ष्य केवल नौकरी, पद, प्रतिष्ठा का लोभ विद्यार्थियों में भर गया है। आज विद्यार्थी पढ़ने के बजाय,

कोचिंग कालेजों, का मुंह मांगी रकम देते हैं, नकल करानें व नम्बर दिलानें वाले छात्र नेताओं की खुशामद करते है। विभागों के अनेक लोग प्रयोगात्मक विषयों के परीक्षक, प्राप्तांकों दिखाकर या प्राप्तांक न दिलाने का भय पैदा कर मनचाही चीजों को प्राप्त करनें की कामना तक करते हैं। अंततः एम0म्यूज व डाक्टरेट की डिग्री प्राप्त कर पाते हैं। यद्यपि आर्थिक दृष्टिकोण से डिग्री के महत्व को भी नकारा नहीं जा सकता हैं परन्तु वर्तमान सन्दर्भ में नौकरी पानें के लिये ज्ञान और डिग्री से भी महत्वपूर्ण दो बातें हो गयी हैं–पावर और पैसा। नौकरी के नाम पर लाखों के लेन देन सामान्य बात हो गयी है। शिक्षा प्राप्त करनें से लेकर डिग्री प्राप्त करनें तक और अन्ततः नौकरी प्राप्त करनें तक के बीच प्रत्येक पग पर भ्रष्टाचार उजागर होता है जिसका खामियाजा योग्य विद्यार्थियों को उठाना पड़ता है। संस्थाओं के अन्दरूनी झगड़े, भ्रष्टाचार व नीतिगत कमजोरियां, भाई–भतीजावाद तथा गिरता चारित्रिक व नैतिक स्तर इस बात का प्रमाण है कि संगीत में खास दखल रखनें वालों का इन पर से विश्वास उठ गया है। उनका सौ फीसदी मानना है कि संस्थायें कलाकार पैदा नहीं कर सकती आज अनेक संगीत के विद्यार्थी पर्याप्त सुविधाओं विकास के अवसरों के अभाव में संघर्षशील जीवन जीनें को विवश है इसका दुखद पहलू यह होता है कि संगीत की शिक्षा प्राप्त कर चुके इन छात्रों के साथ अन्य किसी रास्ते का चुनाव विकल्प रूप में नही रहता क्योंकि संगीत शिक्षा के दौरान इनका अन्य विषयों से सम्बन्ध बिल्कुल टूट जाता है तथा अन्य रोजगारपरक परीक्षाओं में संगीत विषय को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। ऐसें में संगीत विद्यार्थियों के पास कोई अन्य विकल्प नहीं रहता जब वे प्रवक्ता पद के लिये साक्षात्कार में बैठते हैं तो शास्त्र पक्ष की जानकारी नगण्य रहनें से एक हद तक कमजोर पड़ जाते हैं एक शिक्षक के लिये मात्र प्रायोगिक ज्ञान का होना ही संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता बल्कि अपने विषय पर पूर्ण अधिकार तथा विकसित तार्किक शक्ति का होना भावी पीढ़ी दिशा दर्शन में कल्याणकारी होगा।

यह ठीक है कि विश्वविद्यालयों में क्रियात्मक पक्ष पर विशेष ध्यान दिया है परन्तु इसके लिये सिर्फ ऐसे शिक्षकों की नियुक्ति करना फरार्टेदार तान लेने आती है कहां तक उचित है। संगीत की शिक्षा के लिये दोनों के पक्षों के लिये अलग–अलग विद्वानो की नियुक्ति होनी चाहिए। नियमित कक्षायें हों तथा श्रवण की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए उतने ही राग व ताल पाठ्यक्रम में रखे जायं जिनकी जानकारी विद्यार्थियों को पूरी तरह से दिया जा सके बाद्यों एवं पुस्तकालयों के अतिरिक्त विद्वानों के आडियो एवं वीडियो टेप भी रखनी चाहिए। Teacher Refresher Course होना चाहिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रोफेसर सी0एस0 व्यास जी द्वारा सुझाये गये Music Management का कोर्स होना चाहिए जिसके तहत विद्यार्थियों के रोजगार के अन्य अवसर संगीत के क्षेत्र में अपनानें पर बल दिया जायेगा। विषम परिस्थितियों में एक संगीत का विद्यार्थी कलाकार भले ही न बन पाये परन्तु वह एक अच्छा शिक्षक समीक्षक शास्त्र वेत्ता, आयोजक, लेखक प्रकाशक तो बन ही सकता है। मीडिया के बढ़ते प्रभाव नें इस तरह अन्य वर्गों को भी सभी के समक्ष लानें का प्रयास किया है।

जरूरत है वर्तमान शिक्षा प्रणाली सुधारने की। शिक्षा व्यवस्था को निहित स्वार्थों में लिप्त प्रबन्धन तंत्र से मुक्त करानें के लिए साहसपूर्ण कदम उठानें की आवश्यकता है। शिक्षा को समाजोन्मुखी बनानें रोजगारपरक तथा युगानुकूल बनानें की आवश्यकता है। बहुत जरूरी है कि हम अपने पुरानें ज्ञान को पूर्णता और गम्भीरता के साथ पुनः प्राप्त करें वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप उसे बनायें तथा आधुनिक समस्याओं का भारतीय दृष्टिकोण से मौलिक समाधान करें। वर्तमान युग महान प्रयास तथा रचनात्मक क्रियाशीलता का

युग है। पाठ्यपुस्तकें तो केवल सुचना प्रदान करती हैं स्वभाव या आचरण में परिवर्तन तथा जीवन जीने की कला सीखनें के लिए तो आचरण वान योग्य आचार्य का सम्पर्क जरूरी है। आज जुगाड़ के इस युग में पद पाये हुये शिक्षकों से उपरोक्त गुणों तथा ज्ञान की उम्मीद कहां तक कर सकते हैं और यह कैसे कह सकते हैं कि जो ज्ञान वो दे रहे हैं वह निर्दोषपूर्ण एवं शास्त्रोक्त है? बेरोजगारी मजबूरी नें इन्हे नौकरी करनें पर मजबूर अवश्य किया परन्तु क्षति किसे हो रही है। संगीत कला को संगीत शिक्षक को या उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को? कुछ विश्वविद्यालयों में तो स्थिति काफी हद तक बेहतर भी है। अनेक महाविद्यालयों एवं गैर सरकारी संस्थाओं में स्थिति विस्फोटक है वर्षों से कहीं कहीं कोई संगीत का शिक्षक ही नहीं है। कहीं कहीं तो वाद्य नहीं है तो कहीं तबला संगतकार नहीं, ऐसे में अनेक सवाल उठते हैं। क्या शास्त्रीय संगीत के विकास के लिये हम सही कदम उठा सके हैं अथवा जस संगीत महारथियों नें संगीत को विश्वविद्यालयी शिक्षा का अंग बनानें में अपना जीवन लगा दिया उनके उद्‌देश्यों की पूर्ति हो पा रही है?

कालेज एवं विश्वविद्यालय के पाठ्‌यक्रम के जरिये भविष्य में कुशल कलाकारों का निर्माण कर सकते हैं? अथवा क्या ये छात्र छात्रायें भविष्य के नामी गिरामी पेशेवर कलाकारों का सामना कर पायेंगे? आज पी–एच0डी0 का जो होड़ लगा हुआ है उससे संगीत के शैक्षणिक स्तर का कितना विकास हो सका तथा इन उपाधियों के चलते हमारे सामाजिक व्यावहारिक तथा व्यक्तिगत स्तर का कितना विकास हुआ।

ऐसे अनेक अहम सवाल आज शिक्षा व्यवस्था से जुड़े हैं। व्यावहारिक अभ्यास प्रधान संगीत कला के विकास हेतु आवश्यक है कि उसे उतना समय एवं महत्व दिया जाये कि वह समग्र विकास कर सके। उसका विकास बहुमुखी हो तभी हम भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों की रक्षा कर पायेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भारतीय संगीत का इतिहास, श्री उमेश जोशी
- हमारा आधुनिक संगीत, श्री सुशील कुमार चौबे
- सरस संगीत, श्री प्रदीप कुमार दीक्षित
- निबन्ध संगीत, श्री लक्ष्मी नारायण गर्ग
- संगीत बोध, श्री शरत्‌चन्द परांजपे
- संगीत मासिक पत्रिका, हाथरस
- संगीत कला बिहार, नीरज

Copyright © 2017, Dr. Jyoti Sinha. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.